हिन्दी साहित्य में नारी–चेतना

Dr. Hem Lata Sharma

Asst. Prof. J.C.M.M - Assandh Distt. Karnal, Haryana-India

---------------------------♦----------------------------

नारी प्रकृति रूपा है, प्रकृति परमपुरुष की इच्छा का प्रतिपफलन है। प्रसिद्ध है कि जगन्नियता को जब एकाकी रमने में कुछ ऊब सी हुई तो वे स्वकीय इच्छा–शक्ति से एक से दो हो गए ;उस तरह से प्रकृति की सुरुचिपूर्ण रमण सृष्टि हैद्ध वह पुरुष की पूरक है। उसे आदिकाल से ही समस्त सृष्टि की संचालिका शक्ति माना जाता है। नारी के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। नारी के संयोग से ही संसार आगे बढ़ता है।

नारी हमेशा से ही पुरुष की प्रेरणा रही है। नारी का शारीरिक सौन्दर्य अगर पुरुष को लुभाता है, उसकी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति करता है तो नारी का आत्मिक सौन्दर्य पुरुष के कार्यों की प्रेरणा भी बनता है। नारी पुरुष को निराशा के क्षणों में आशा देती है, दुःख में दिलासा देती है और उसके कर्म में उत्साह भरती है।

नारी : परिभाषा एवं स्वरूप :

प्रत्येक शब्द का इतिहास है। उसका स्वतन्त्रा अस्तित्व है। शब्द अपने वाच्य के स्वरूप का भी संकेत करता है। नारी अर्थ के बोधक शब्द भी नारी के स्वरूप पर बहुत प्रकाश डालते हैं। कवियों की दृष्टि में नारी माया–सी, दुर्बोध, प्रकृति–सी बहुरूपी, साथ ही सहानुभूति–सी सरल रही है। यदि शब्दों कें विकास के साथ मानव सभ्यता के विकास का अध्ययन किया जाए तो जान पड़ेगा कि नारी उतने ही अंश में रहस्यमयी है, जितने अंश में संसार की कोई भी वस्तु। विषम समाज में विषम स्थिति होने के कारण नारी के विभिन्न स्वरूप होते गए। मानव को नारी के साथ शारीरिक, रागात्मक और धार्मिक सम्बन्ध होने के कारण नारी के स्वरूप–भेद हुए। ये भेद प्रभेद इतने जटिल बन गए है, कि आज शब्द के आधार पर नारी के वास्तविक स्वरूप को समझना कठिन है। किसी एक शब्द से नारी के स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। पिफर भी, जिस तरह एक छोटे से ओस–बिन्दु में सम्पूर्ण सूर्यमण्डल प्रतिबिम्बित हो जाता है, उसी प्रकार नारी–वाचक छोटे–से–छोटे शब्द में भी उसकी जाति, उसके गुण, उसकी क्रिया अथवा इच्छा झलक जाती है। साथ ही नाम रखने वाले समाज की मानसिक स्थिति, बौ(िक उन्नति और सांस्कृतिक चेतना भी व्यक्त हो जाती है।

प्राणी जगत में 'नारी' शब्द 'नर' के समानान्तर है। इसका प्रयोग स्त्रीलिंग वाची मादा प्राणियों के रूप में होता है किन्तु मानव समाज में 'नारी' शब्द इस सामान्य अर्थ में गृहित नहीं है, क्योंकि उसका स्थान नर से कहीं बढ़कर है। यही नहीं, रूप–आकार, शरीर संगठन, कार्य–व्यापार एवं जीवन–यापन की विविध स्थितियों में नारी विधाता की उच्चतम परिकल्पना सिद्ध हुई है पिफर भी नारी की परिभाषा और स्वरूप को अच्छी तरह जानने के लिए 'नारी' शब्द की व्युत्पत्ति को जानना बहुत आवश्यक है।

नारी शब्द की व्युत्पत्ति :

'नारी शब्द नृ अथवा नर' से बना है। नृ+घीष=नारी–नरस्य समान धर्मा नारी, नृ+अ+घ्रीन = नारी।1

नारी शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है। 'यास्क ने 'नर' शब्द को नृत से बनाया है–नराः नृत्यन्ति कर्मसु' अर्थात् काम की पूर्ति के लिए मनुष्य हाथ पैर नचाता है। नारी के लिए स्त्री शब्द का प्रयोग भी होता है। ;यह शब्द उसे पुरुष के लैंगिक सहयोगी के रूप में स्त्री की व्युत्पत्ति के विषय में निरुक्तकार का मत है कि स्त्री शब्द स्त्रायै धातु से बना हैद्ध यास्क के मतानुसार स्त्रायै का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है। टीकाकार दुर्गाचार्य नारी की 'स्त्री' संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानते हैं किन्तु पाणिनी के धातु पाठ में 'स्त्रायै' का अर्थ लजाना नहीं मिलता। धातुपाठ के अनुसार 'स्त्रायै' शब्द का अर्थ है 'शब्द करना' तथा इक्ट्ठा करना। जान पड़ता है कि नारी का स्त्री नाम सम्भवतः उसके वाचाल होने के कारण ही पड़ा। महर्षि पंतजलि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में समझाया है कि नारी को स्त्री इसलिए कहते हैं कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। उन्होंने एक दूसरी व्युत्पत्ति भी की है– शब्द स्पर्श–रूप सगंधाना गुणानां स्त्रायानं–संधातम–स्त्री' अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध–इन सब का समुच्चय ही स्त्री है।त्2 इससे स्पष्ट है कि नारी शब्द की व्युत्पत्ति अनेक शब्दों से मानी गयी है।

नारी : भारतीय विद्वानों के मत :

1. प्रेमचन्द जी के मतानुसार : 'पुरुष विकास के क्रम में नारी के पीछे पीछे है। जिस दिन वह भी पूर्ण विकास तक पहुंचेगा। वह स्त्री हो जाएगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर सृष्टि थमी हुई है और ये स्त्रियों के गुण है।'

2. स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार : फ्स्त्री पूजन से ही समाज की प्रगति होती है। जिस देश अथवा समाज में स्त्री पूजन नहीं होता वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। पश्चिमी देशों के अधःपतन का कारण उन्होंने शक्तिरूपिणी स्त्री की अवहेलना माना है।3

3. रविन्द्र नाथ ठाकुर के मतानुसार :फउन्होंने अपनी रचना 'मानसी गीत' में नारी को 'भगवान की अद्‌भुत कृति' माना है।य4

4. महादेवी वर्मा के अनुसार :फ्पुरुष प्रतिशोधमय शोध है, स्त्राी क्षमा। पुरुष शुष्क कर्त्तव्य है, स्त्राी सरस सहानुभूति। पुरुष ब्रह्मा है तो स्त्राी हृदय की प्रेरणा।5

'चेतना' की व्याख्या :

'चेतना' प्राणी मात्रा में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। 'चित्' संज्ञा ने–धातु' में युच, अन टाप प्रत्ययों के संयोग से चेतना शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अभिप्राय है मन की वह वृत्ति या शक्ति जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों भाषा, विचारों आदि तथा बाह्य घटनाओं, तत्त्वों या बातों का अनुभव या भान होता है।6

चेतना शब्द की व्युत्पत्ति से भी इसी आशय की पुष्टि होती है। अमरकोष में इसको बु(ि, भगवद्‌गीता में ज्ञानात्मिका मनोवृत्ति तथा दर्शन में इसको स्वयं प्रकाश–तत्त्व कहा गया है। विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुंचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूति होती है। संरचनावादी मनोवैज्ञानिक विल्हम वुट के अनुसार, 'चेतना में संवेदना, विचार, भावना तथा इच्छा सम्मिलित है। उसके अनुसार चेतना का अनुभव दो प्रकार का होता है– संवेदना तथा भावना। संवेदना बाह्य जगत से आती है और भावनाएँ आन्तरिक होती है।7

चेतना का विकास :

चेतना का विकास विभिन्न तत्वों और स्थितियों के संयोग और संस्कारों से होता है। सामाजिक वातावरण और इतिहास बोध का इसको विकसित करने में प्रमुख हाथ रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम की प्रस्तुति स्वयं में करता है। विशिष्ट प्रकार के संस्कार पैत्रिाक–दाय के रूप में ग्रहण करके विकसित करता है, क्योंकि उसने विभिन्न प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण विविध रूप में प्राप्त किया है। वातावरण और इतिहास बोध के प्रभाव से उसमें नैतिकता, औचित्य, व्यवहार कुशलता, सौन्दर्य–बोध, आध्यात्मिक बोध के प्रति जागरूकता आती है। यही चेतना का विकास है। हिन्दी के समीक्षा क्षेत्रा में 'चेतना' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी 'कान्शसनेस' शब्द के अर्थ में ही प्रायः किया जाता है। फ्डॉ॰ हरदेव बाहरी ने 'कान्शसनेस' के अनेक अर्थ दिए है जिनमें मुख्य है–प्रतिबोध, चेतन्य, चेतना,संज्ञा, जागृति, ज्ञान, बोध, व्यक्ति की भावनाओं और विचारों की समष्टि, पूर्णता।8

चेतना के रूप एवं परिव्याप्ति :

'चेतना के तीन रूप होते हैं– चेतन, अवचेतन और अचेतन।य9 चेतन रूप में उन सभी बातों का समावेश किया जाता है जो हमारी गतिशीलता को जीवन्तता देती हैं। अवचेतन में वे सभी बातें रहती हैं जो हमारे ज्ञान के बाहर रहती है, जो विस्मृति के अथाह सागर में पहुँच जाती है तथा स्मरण करने पर भी, जिनका पुनर्स्मरण संभव नहीं है। 'चेतना की अनुभूतियाँ भी कभी अवचेतन तो कभी अचेतन में परिभ्रमित रहती हैं वे अनुभूतियाँ निष्क्रिय नहीं वरन् अनजाने ही मानव को प्रभावित करती रहती है।10

सारी सृष्टि का प्रत्येक घटक या तो जड़ है अथवा चेतन। जो जड़ है उसमें संवेदनात्मकता की प्रबल उत्कण्ठा और सजगता की प्रवृत्ति का एंकान्तिक अभाव है। भाववादियों और आध्यात्मवादियों की दृष्टि में पदार्थ–जगत चेतना जन्य है। वस्तुतः चेतना ही सारी सृष्टि का आधार है। भौतिकवादी चेतना को जड़ तत्त्व में परम अंश की विशिष्ट जातियों की परिणति स्वीकार करते हैं। सार्त्रा ने चेतना प्रवाहवाद को साहित्य में महत्त्वपूर्ण माना है। आत्मा और चेतन्य वह सत्य है जिसकी विवेकशक्ति मनुष्य को पशुजगत से पृथक् अस्तित्व का मानती है।

चेतना एक ऐसा धर्म है जिसके आलोक में वैयक्तिक और सामाजिक जागृति का धर्म उद्दीप्त होता है। मानव–सभ्यता और संस्कृति की दौड़ में सामाजिक जागृति और राष्ट्रीय–राजनीतिक भावना की अनुभूतिजन्य चेतना ने सदैव महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

इन अर्थों के आधार पर चेतना समाज–सापेक्ष होती है। सामाजिक अवनति की विविध प्रतिकूल दशाओं में जो प्रतिभा शक्ति दीप्ति बनकर चमक उठे और जिसके प्रभाव से समस्त समाज में नवजागरण की लहर दौड़ जाए, उसी को सामाजिक चेतना का अग्रदूत समझना चाहिए। जिस हृदय में शब्द का प्रमाण अनुप्राणित होता है, वह सच्ची प्रतिभा युग साहित्य के आयाम में सामाजिक चेतना की सत्य सृष्टि करता है, समाज को दृष्टि और जीवन देता है।य11 किसी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है। सामाजिक चेतना की तीन विशेषताएँ हैं–वह ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक होती है। युगीन सन्दर्भ में आज व्यवहार के स्तर पर जो प्रदेय है, अनुभूति के स्तर पर वही चेतना है। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि विचार और अनुभूति के उद्वेलन का दूसरा नाम चेतना है।

नारी–चेतना का अर्थ एवं स्वरूप :

'नारी' शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है तथा चेतना शब्द का अर्थ है प्राणी–मात्रा में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। नारी–चेतना का अर्थ हुआ नारी में निहित जागरूक शक्ति। नारी समाज तथा परिवार का एक अभिन्न अंग है। जब तक नारी अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक न परिवार ठीक से चल सकता है और न ही समाज। प्राचीन काल से आज तक नारी में चेतना का निरन्तर विकास होता रहा है। वह निरन्तर विकास की सीढ़ियों पर चढ़ती रही है। नारी की प्रशंसा में शिवजी बतलाते हैं कि–फ्नारी के समान न योग है, न जप है, न तप है, न तीर्थ है। यही इस संसार की सर्वाधिक पूजनीय देवता है क्योंकि वह पार्वती का रूप है। उसके समान न कुछ था, न ही कुछ होगा।12

प्रारम्भ में नारी केवल एक विलास की सामग्री थी। नारी के विभिन्न रूप माँ, बहन, पुत्राी आदि अधिक विकसित न हो सके थे। नारी का क्षेत्रा बहुत संकुचित था। स्त्रियों को घर की चार–दीवारी के अन्दर ही रहना होता था। उन्हें पढ़ने–लिखने, नौकरी आदि की किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी। नारियाँ एक प्रकार की घुटन भरी ज़िन्दगी व्यतीत कर रही थी।

ये नारी–चेतना का ही विकास है कि नारी वर्तमान में कन्धे से कंधा मिलाकर पुरुषों के साथ कार्य कर रही है। नारी के मन में पुरुष की दासता से मुक्त होने की ललक पैदा होती है। नारी अब शिक्षित भी हो चुकी है। कर्मभूमि उपन्यास की 'सुखदा' पुलिस के सामने खड़ी होकर कहती है–फ्क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं। छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।13 इस समय स्त्रियाँ जागरूक हो चुकी है। वो पुरुषों में शक्ति का संचार है। एक बार एक ंेच लेखक ने भी लिखा था कि अगर किसी देश की अवस्था का पता लगाना हो, तो वहाँ की स्त्रियों की दशा जानना जरूरी है। इसका तात्पर्य है कि जो समाज जितना अधिक उन्नतिशील होगा, वहाँ स्त्रियाँ की दशा उतनी ही विकसित होगी।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भारतीय नारी ने नई रोशनी, नई सभ्यता के प्रसार में देखा कि वह पति की दासी नहीं हैं। समाज में नारी को भी पुरुष के समान अधिकार है। बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, विधवा–विवाह और वेश्यावृत्ति के विरु(आन्दोलन चरम पर था। प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है–फ्स्त्री–पुरुष एक होकर रहें, दोनों में मतभेद न होने पावे। स्त्री को गर्व न हो कि मैं स्वामी से बड़ी हूँ और न स्वामी को अभिमान हो कि ईश्वर ने सब बुद्धि मेरे ही हिस्से में रखी है। स्त्री घर की मालकिन है और पुरुष बाहर का, लेकिन दोनों में मतैक्य हो दोनों इस पवित्रा प्रेम सूत्रा में बंधे हों, जहाँ न राज है न अभिमान, न द्वेष है और न कलह।14 भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं समाज में नारी को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। दर्शन नारी को प्रकृति रूपा मानता है। वह सृष्टि के मूल में है। पुरुष के रागात्मक जीवन में नारी सदैव उच्च स्थान की अधिष्ठात्री रही है। वह परिवार की संचालिका है। वैदिक साहित्य में नारी के पत्नी रूप को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वहाँ प्रत्येक गृहस्थ द्वारा कन्या की कामना की गई है। पुत्रा और पुत्री में कोई भेद नहीं माना गया। पुराणकाल में कन्या को देवी रूपा स्वीकार किया गया है जबकि श्रीमद्भागवत में नारी के कन्या रूप का गुणगान है।

इस प्रकार नारी–चेतना की परम्परा वेदों–पुराणों से चली आ रही है। अंग्रेजी प्रशासन ने शिक्षा में सुधार लाकर नारी को जागृत किया और नारी ने स्वाधीनता आन्दोलन में पुरुष के समान प्रयत्न किये। स्वतन्त्राता के बाद भारतीय नारी ने अधिकाधिक प्रगति की ओर कदम बढ़ाए और देश के उच्चतम प्रशासकीय पदों पर काम किया व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रा में भी अपने व्यक्तित्व का प्रभाव सि(किया। स्त्री जागृति हुई उसे पुरुष के समान अधिकार मिले। आज की नारी परम्परा की लीक पाटने की अपेक्षा नई चुनौतियों भरी राहों पर चलने का खतरा उठाने को तत्पर है। परिणामस्वरूप नारी के विकास की गति बढ़ी उसमें अधिकार बोध विकसित हुआ।

हिन्दी–साहित्य में नारी–चेतना :

हिन्दी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के साथ–साथ हिन्दी गद्य साहित्य में भी नारी–चेतना का विकास हुआ है। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

आदिकाल : हिन्दी का आदिकाव्य वीरगाथाओं तथा धार्मिक उपदेशों के रूप में लिखा गया है। पिफर भी तत्कालीन वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुसार इस काव्य में नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। इस काल में अधिकांश साहित्य राजकुमारियों के अपहरण तथा उनके पफलस्वरूप होने वाले यु(ों का वर्णन मिलता है। फ्इस सामन्तवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। रासो काव्य की नायिकाओं के जीवन भी नारी–दुर्दशा की कहानी ही कहते हैं।15

इस काल में नारी–सौन्दर्य वर्णन भी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं था। डॉ॰ उषा पाण्डे का यह कथन अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है–फ्वीर काव्य में भी नारी का शृंगार–सौरभ की मादकता से बोझिल स्वरूप ही दृष्टिगत होता है। उसके वीरांगना, वीरमाता और क्षत्राणी के प्रांजल रूप को शृंगार की धूप ने प्रच्छन्न–सा कर दिया है।16 तत्कालीन समाज में नारी, विलास की सामग्री होने के कारण पुरुष की निजी सम्पत्ति ही मानी जाती थी। मनुष्य स्वयं तो अपनी इच्छा से कई पत्नियाँ रख सकता था, किन्तु नारी के लिए पति की मृत्यु के पश्चात् सती हो जाना उसका कर्त्तव्य बना दिया गया। उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के पफलस्वरूप शृंगार की प्रेरणा बन गया था।

भक्तिकाल : इस काल के साहित्य में नारी मुख्यतः दो रूपों में अंकित हुई एक ओर तो वह सामान्य नारी रूप में निंदा एवं उपेक्षा की पात्रा रही तो दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित भी हुई। एक ओर तो इस युग में निर्गुणमार्गी संत कवि थे। जिन्होंने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा एवं पुरुष को विनाश के पथ पर ले जाने वाली माना है। 'कबीर ने नारी को नरक का द्वार माना है। मलूकदास नारी के नेत्रों को भयानक कहते हैं तथा दादूदयाल संसार को पतंगा तथा कनक–कामिनी को दीपक की लौ बताते हैं।17

दूसरी तरपफ प्रेममार्गी कवि जायसी ने नारी को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उसकी प्रशंसा की है। तुलसीदास ने नारी के प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण के कारण ही उसे 'ढोल गंवार शुद्र एवं पसु' के सादृश्य बताया। डॉ॰ नगेन्द्र के मतानुसार, फ्तुलसीदास के 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रन्थों के विभिन्न प्रसंगों में, ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं, जो किसी भी देशकाल की नारी के प्रति न्याय नहीं करती। उन्होंने नारी की प्रकृति, बु(ि, विवेक, आचार, व्यवहार सभी की निंदा की है।य18 सूर के काव्यों में गोपियों एवं राधा के माध्यम से नारी का जो प्रेमिका रूप निरुपित हुआ है, वह प्रेममय एवं त्यागमय तो अवश्य है, किन्तु साथ ही वह एक असहाय निरुपाय नारी का चित्रा भी प्रस्तुत करता है। अतः इस काल के कवियों के नारी विषयक दृष्टिकोण में मतभेद ही रहा है। फ्एक ओर तो उसे मुक्ति–मार्ग की बाधा मानकर उसकी उपेक्षा की है तो दूसरी ओर सीता, पार्वती की वन्दना भी की है। एक ओर उसे नागिन व नरक का द्वार कहा है तो दूसरी ओर अपनी आत्मा को भी नारी–रूप में ही अंकित किया है।

रीतिकाल : रीतिकाल में भक्तिकाव्य की उपेक्षित नारी रीतिकालीन मुक्तक काव्य में आकर्षण की केन्द्र बिन्दु 'नायिका' बन गई और ये मुक्तिकार नायिका भेदोपभेद एवं नख–शिख वर्णन में अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने लगे।

इन कवियों ने राधा–कृष्ण की लीलाओं का जो वर्णन किया है, उसमें भी आध्यात्मिकता की आड़ में नारी के प्रति वासना ही व्यक्त हुई है।

उस विलासपूर्ण वातावरण में नारी का केवल कामिनी एवं प्रेयसी रूप ही शेष रह गया। फ्यद्यपि इस काव्य में अंकित प्रेमिकाएँ अधिकांश में परकीयाएँ ही हैं, जिनमें उज्ज्वल पत्नीत्व की गरिमा को खोजने पर निराशा ही मिलती है, पिफर भी, प्रिय के ध्यान में आत्मविस्मृत हो अपना ही प्रतिबिम्ब दर्पण में देखकर रीझने वाली यह प्रेमिका रूपा नारी, प्रेमिका के उत्कर्षमय भाव–संवलित रूप का आदर्श भी प्रस्तुत करती है।19

इन कवियों की दृष्टि न तो सीता के पतिव्रत पर गई, न सावित्री के सतीत्व पर, न पार्वती की पावनता पर गई और न ही यशोधा की ममतामयी मातृ–गरिमा पर! रीतिब(कवियों के द्वारा तो नारी के सामाजिक जीवन के महत्त्व का उद्घाटन हो ही नहीं पाया, रीतिमुक्त कवियों में भी उसका यह महत्त्व व्यक्त नहीं हो पाया। सभी बंधी–बंधाई लकीर पर उसके अंग–प्रत्यंग की शोभा, हाव–भाव और विलास चेष्टाओं का वर्णन करते रहे। फ्इस सम्बन्ध् में आचार्य हजारी प्रसाद के शब्द विशिष्ट रूप में अवलोकनीय है–फ्यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बन्ध्न से यथासम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्रा है

आधुनिक काल : आधुनिक काल में सर्वप्रथम भारतेन्दु युग आता है। इस काल के कवियों की दृष्टि नारी के विविध् रूपों पर तो अवश्य गई है। किन्तु वे उसकी शक्ति के प्रति पूर्णतः आश्वस्त नहीं जान पड़ते। इस युग में नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण होते हुए भी नारी निपट भोग्या या उपेक्षित नहीं रही। उसकी हीन–दशा के प्रति भी कवि की सहानुभूति सजग हुई और उसको आवश्यक आदर देने की दिशा में भी ये कवि अग्रसर हुए।

द्विवेदी युगीन काव्य में नारी सम्बन्धी दो दृष्टियाँ मिलती हैं–फ्एक रीतिकाव्य के अवशेष रूप में उसी परम्परा की कड़ी में जुड़ी हुई भारतेन्दु और बदरीनारायण प्रेमध्न की नायिकाएँ।य्20 दूसरी युग चेतना से प्रभावित गुप्त और हरिऔध् के नारी चित्राण। गुप्त जी ने नारी चरित्रों का सर्जन पुरुषों की भोग्या एवं काम्या के रूप में नहीं वरन् पुरुष की संगिनी वाली भावना से किया है। 'साकेत', यशोध्रा और 'विष्णुप्रिया' नारी प्रधन कृतियाँ हैं। गुप्त जी कहते हैं कि वे नारी को मानवतावादी मूल्य, भावनाशील दृष्टि और सामाजिक सम्पन्नता की कसौटी पर परखते हैं।21

हरिऔध् ने प्रियप्रवास के माध्यम से नारी के चरित्रा की राध–रूप में प्रेम और कर्त्तव्य भावना का अद्भुत सामंजस्य दिखाया है–फ्सामाजिक सन्दर्भों में नारी सम्बन्धी समस्याओं–बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, बाध्कि वैध्व्य पर न केवल इनका ध्यान गया वरन पीड़ित नारी के 'आक्रोश' को भी व्यक्त किया है।22

रीतिकाल की नारी चौबीस घंटे भोग–विलास की वस्तु थी और द्विवेदी युग की नारी सती सीता और सावित्री की भांति मात्रा वन्दनीया। यह बदलते हुए सामाजिक सन्दर्भों की देन है कि छायावादी कवियों की नारी आदर्श और कल्पना के उच्चासन पर आसीन सुकुमार भावना और पुरुष की चिरसंगिनी है। 'प्रसाद के काव्य में नारी के पत्नी, प्रेयसी, गृहिणी आदि का चित्राण भी मिलता है। इन्होंने नारी के सौन्दर्य का सर्वथा नवीन, मौलिक, स्वर्गिक, प्रकृति के अनूठे से भरा रूप चित्रित किया है। प्रकृति में नारी रूप को समाहित कर उदात्त भावभूमि प्रदान की है।23

निराला यह मानकर चलते हैं कि 'नारी का सौन्दर्य रीतिकालीन कवियों के मांसल चित्राण में सीमित नहीं वरन् विस्तृत, दिव्य और रमणीय है।24 इन कवियों ने नारी का भाव–चित्राण ही किया है, नारी सम्बन्धी अपनी मानसिक प्रतिमा का ही निर्माण किया है। इसलिए इनकी नारी वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ है, मांसल न होकर सूक्ष्म है। वह काल्पनिक और वायसी है।

दूसरी तरपफ कथा–साहित्य में प्रेमचंद के बाद के युग की नारी ने भारतीय समाज की परम्परागत मान्यताओं को तोड़ा है। उसने स्वावलम्बी बनने का प्रयास किया है और शिक्षित होकर समाज में अपने लिए नई राहों को तलाशा है। वह भी पुरुष की तरह स्वतन्त्रा, स्वच्छंद और आर्थिक दृष्टि से सबल हुई है।

निष्कर्ष :

नारी सम्पूर्णता का दूसरा पहलू है। वह न केवल पुरुष को पूर्णता प्रदान करती है बल्कि दुनिया का आध प्रतिनिध्त्वि भी उसके हाथों में है। अनादिकाल से नारी पूजनीय रही है। इसीलिए पुरुष को यदि शिव का प्रतिरूप माना गया तो नारी को शक्ति का। इस सृष्टि की सुन्दरतम कृति नारी ही है। इसलिए उसको सृष्टि की साध्ना और प्रकृति का मूर्त रूप माना गया है, किन्तु सामाजिक परिस्थितियों के चलते वैदिक काल के बाद नारी को निम्न दृष्टि से देखा जाने लगा और रीतिकाल आते–आते नारी एक उपभोग की वस्तु बनकर रह गई। नारी का जितना शोषण पिछले 50–55 वर्षों में हुआ है, वह नारी के प्रति विकृत मानसिकता का ही पर्याय है। परन्तु पिफर भी नारी की उत्पत्ति ही पुरुष के अस्तित्व की पहचान है। नारी ही वह चेतनाप्रद शक्ति है जो सृष्टि संरचना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आधार सूची :

1. डॉ॰ वल्लभ दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 36
2. डॉ॰ वल्लभ दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 37
3. डॉ॰ वल्लभ दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 37–38
4. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. 71
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 24
6. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ. 274
7. रामपाल सिंह वर्मा, मनोविज्ञान के सम्प्रदाय, पृ. 3
8. डॉ॰ हरदेव बाहरी, वृहत अंग्रेजी–हिन्दी कोश, पृ. 275
9. इन्द्रदेव तिवारी, सामाजिक उन्नति, पृ. 399
10. हिन्दी विश्वकोश, चतुर्थ खण्ड, पृ. 283

11. डॉ॰ रत्नाकार पाण्डेय, हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, पृ. 157

12. वृहद्–संहिता, पृ. 74

13. डॉ॰ रेखा कुलकर्णी, हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ. 84

14. वही, पृ. 70

15. डॉ॰ सौ॰जे॰एम॰ देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 38

16. डॉ॰ सौ॰ जे॰एम॰ देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 39

41. वही, पृ. 40

17. वही, पृ. 41

18. डॉ॰ सौ॰जे॰एम॰ देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 43

19. वही, पृ. 44

20. डॉ॰ देवेश ठाकुर, प्रसाद के नारी चरित्रा, पृ. 149

21. मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और रचना, पृ. 127

22. डॉ॰ देवेश ठाकुर, प्रसाद के नारी चरित्रा, पृ. 185

23. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 46

24. डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, आधुनिक कविता का मूल्यांकन, पृ. 154